नियमसार

*

नियमसार

जीवाधिकार

मंगलाचरण और प्रतिज्ञावाक्य

णमिऊण जिणं वीरं, अणंतवरणाणदंसणसहावं।
वोच्छामि णियमसारं, केवलिसुदकेवलीभणिदं।।१।।

अनंत और उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन स्वभावसे युक्त श्री महावीर जिनेंद्रको नमस्कार कर मैं केवली और श्रुतकेवली द्वारा कहे हुए नियमसारको कहूँगा।।१।।

मोक्षमार्ग और उसका फल

मग्गो मग्गफलं ति य, दुविहं जिणसासणे समक्खादं।
मग्गो मोक्खउवाओ, तस्स फलं होइ णिव्वाणं।।२।।

जिनशासनमें मार्ग और मार्गफल इस तरह दो प्रकारका कथन किया गया है। इनमें मोक्ष का उपाय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मार्ग है और निर्वाणकी प्राप्ति होना मार्गका फल है।।२।।

नियमसार पदकी सार्थकता

णियमेण य जं कज्जं, तण्णियमं णाणदंसणचरित्तं।
विवरीयपरिहरत्थं, भणिदं खलु सारमिदि वयणं।।३।।

नियमसे जो करनेयोग्य है वह नियम है; ऐसा नियम ज्ञान, दर्शन, चारित्र है। इनमें विपरीत अर्थात् मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्रका परिहार करनेके लिए 'सार' यह वचन नियमसे कहा गया है।

भावार्थ -- नियमसारका अर्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। इन्हींका इस ग्रंथमें वर्णन किया जायेगा।।३।।

नियम और उसका फल

णियमं मोक्खउवाओ, तस्स फलं हवदि परमणिव्वाणं।
एदेसिं तिण्हं पि य, पत्तेयपरूवणा होई।।४।।

नियम अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्षका उपाय है और उसका फल

परमनिर्वाण है। इस ग्रंथमें इन तीनोंका पृथक्-पृथक् निरूपण है।।४।।

व्यवहार सम्यग्दर्शनका स्वरूप

अत्तागमतच्चाणं, सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं।

ववगयअसेसदोसो, सयलगुणप्पा हवे अत्ता।।५।।

आप्त, आगम और तत्त्वोंके श्रद्धानसे सम्यग्दर्शन होता है। जिसके समस्त दोष नष्ट हो गये हैं तथा जो समस्त गुणोंसे तन्मय है ऐसा पुरुष आप्त कहलाता है।।५।।

अठारह दोषोंका वर्णन

[1]छुहतण्हभीरुरोसो, रागो मोहो चिंता जरा रुजा मिच्चू।

स्वेदं खेद मदो रइ, विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो।।६।।

क्षुधा, तृष्णा, भय, द्वेष, राग, मोह, चिंता, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, पसीना, खेद, मद, रति, विस्मय, निद्रा, जन्म और उद्वेग ये अठारह दोष हैं।।६।।

परमात्माका स्वरूप

णिस्सेसदोसरहिओ, केवलणाणाइपरमविभवजुदो ।

सो परमप्पा उच्चइ, तव्विवरीओ ण परमप्पा।।७।।

जो (पूर्वोक्त) दोषोंसे रहित है तथा केवलज्ञान आदि परम वैभवसे युक्त है वह परमात्मा कहा जाता है। उससे जो विपरीत है वह परमात्मा नहीं है।।७।।

आगम और तत्त्वार्थका स्वरूप

तस्स मुहग्गदवयणं, पुव्वापरदोसविरहियं सुद्धं।

आगममिदि परिकहियं, तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था।।८।।

उन परमात्माके मुखसे निकले हुए वचन, जो कि पूर्वापर दोषसे रहित तथा शुद्ध हैं 'आगम' इस शब्दसे कहे गये हैं और उस आगमके द्वारा कहे गये जो पदार्थ हैं वे तत्त्वार्थ हैं।।८।।

तत्त्वार्थोंका नामोल्लेख

जीवा पोग्गलकाया, धम्माधम्मा य काल आयासं।

तच्चत्था इदि भणिदा, णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।।९।।

---

१. क्षुधा तृषा भयं द्वेषो रागो मोहश्च चिन्तनम्।
जरा रुजा च मृत्युश्च स्वेदः खेदो मदो रतिः।।१५।।
विस्मयो जननं निद्रा विषादोऽष्टादश ध्रुवाः।
त्रिजगत्सर्वभूतानां दोषाः साधारणा इमे।।१६।।

जीव, पुद्‌गलकाय, धर्म, अधर्म, काल और आकाश ये तत्त्वार्थ कहे गये हैं। ये तत्त्वार्थ अनेक गुण और पर्यायोंसे संयुक्त हैं।।

जीवका लक्षण तथा उपयोगके भेद

जीवो उवओगमओ, उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो, सहावणाणं विभावणाणं त्ति।।१०।।

जीव उपयोगमय है अर्थात् जीवका लक्षण उपयोग है। उपयोग ज्ञानदर्शनरूप है अर्थात् उपयोगके ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोगके भेदसे दो भेद हैं। उनमें ज्ञानोपयोग स्वभावज्ञान और विभावज्ञानके भेदसे दो प्रकारका है।।१०।।

स्वभावज्ञान और विभावज्ञानका विवरण

केवलमिंदियरहियं, असहायं तं सहावणाणं त्ति।
सण्णादिदरवियप्पे, विहावणाणं हवे दुविहं।।११।।

इंद्रियोंसे रहित तथा प्रकाश आदि बाह्य पदार्थोंकी सहायतासे निरपेक्ष जो केवलज्ञान है वह स्वभावज्ञान है। सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञानके विकल्पसे विभावज्ञान दो प्रकारका है।।११।।

सम्यग्‌विभावज्ञान तथा मिथ्या विभावज्ञानके भेद

सण्णाणं चउभेदं, मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं तिवियप्पं, मदियाई भेददो चेव।।१२।।

सम्यग्विभावज्ञानके चार भेद हैं -- मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय। और अज्ञानरूप विभावज्ञान कुमति, कुश्रुत तथा कुअवधिके भेदसे तीन प्रकारका है।।१२।।

दर्शनोपयोगके भेद

तह दंसणउवओगो, ससहावेदरवियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं, असहायं तं सहावमिदि भणिदं।।१३।।

उसी प्रकार दर्शनोपयोग, स्वभावदर्शनोपयोग और विभावदर्शनोपयोगके भेदसे दो प्रकारका है। इनमें इंद्रियोंसे रहित तथा परपदार्थकी सहायतासे निरपेक्ष जो केवलदर्शन है वह स्वभावदर्शन है इस प्रकार कहा गया है।

विभावदर्शन और पर्यायके भेद

चक्खु अचक्खू ओही, तिण्णिवि भणिदं विभावदिच्छित्ति।
पज्जाओ दुवियप्पो, सपरावेक्खो य णिरवेक्खो।।१४।।

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ये तीनों दर्शन, विभावदर्शन हैं इस प्रकार कहा गया है।

स्वपरापेक्ष और निरपेक्षके भेदसे पर्यायके दो भेद हैं।।

विभावपर्याय और स्वभावपर्यायका विवरण

णरणारयतिरियसुरा, पज्जाया ते विभावमिदि भणिदा।
कम्मोपाधिविवज्जिय,पज्जाया ते सहावमिदि भणिदा।।१५।।

मनुष्य, नारक, तिर्यंच और देव ये विभावपर्यायें कही गयी हैं तथा कर्मरूप उपाधिसे रहित जो पर्यायें हैं वे स्वभावपर्यायें कही गयी हैं।।१५।।

मनुष्यादि पर्यायोंका विस्तार

माणुस्सा दुवियप्पा, कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्तविहा णेरइया, णादव्वा पुढविभेएण।।१६।।

कर्मभूमिज और भोगभूमिजके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके हैं तथा पृथिवियोंके भेदसे नारकी सात प्रकारके जानने चाहिए।।१६।।

चउदहभेदा भणिया, तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं, लोयविभागेसु णादव्वं।।१७।।

तिर्यंचोंके चौदह और देवसमूहके चार भेद कहे गये हैं। इन सबका विस्तार लोकविभागमें जानना चाहिए।

भावार्थ -- सूक्ष्म एकेंद्रय पर्याप्तक, अपर्याप्तक, बादरएकेंद्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक, द्वींद्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक, त्रींद्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक, चतुरिंद्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक, असंज्ञिपंचेंद्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तक और संज्ञिपंचेंद्रिय पर्याप्तक, अपर्याप्तकके भेदसे तिर्यंचोंके चौदह भेद हैं। तथा भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिकके भेदसे देवसमूहके चार भेद हैं। इन सबका विस्तार लोकविभाग नामक परमागममें जानना चाहिए।।१७।।

आत्माके कर्तृत्व-भोक्तृत्वका वर्णन

कर्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारा।
कम्मजभावेणादा, कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो।।१८।।

आत्मा पुद्गल कर्मका कर्ता भोक्ता व्यवहारसे है और आत्मा कर्मजनित भावका कर्ता भोक्ता निश्चयसे अर्थात् अशुद्ध निश्चयसे है।

भावार्थ -- अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयकी अपेक्षा आत्मा द्रव्यकर्मका कर्ता और उसके फलका भोक्ता है और अशुद्ध निश्चय नयकी अपेक्षा कर्मजनित मोह राग द्वेष आदि भावकर्मका कर्ता तथा भोक्ता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नयसे शरीरादि नोकर्मका कर्ता है तथा उपचरित असद्भूत

व्यवहार नयसे घटपटादिका कर्ता है। यह अशुद्ध जीवका कथन है।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयसे जीवकी पर्यायोंका वर्णन

दव्वत्थिएण जीवा, वदिरित्ता पुव्वभणिदपज्जाया।
पज्जयणएण जीवा, संजुत्ता होंति दुविहेहिं।।१९।।

द्रव्यार्थिक नयसे जीव, पूर्वकथित पर्यायोंसे व्यतिरिक्त -- भिन्न है और पर्यायार्थिक नयसे जीव स्वपरापेक्ष तथा निरपेक्ष -- दोनों प्रकारकी पर्यायोंसे संयुक्त है।।

भावार्थ -- यहाँ द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा जीवकी भिन्नता तथा अभिन्नता का वर्णन किया गया है इसलिए स्याद्वादकी शैलीसे जीवका स्वरूप समझना चाहिए।।१९।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें
जीवाधिकार नामका पहला अधिकार समाप्त हुआ।

**

२
अजीवाधिकार

पुद्गल द्रव्यके भेदोंका कथन

अणुखंधवियप्पेण दु, पोग्गलदव्वं हवेइ दुवियप्पं।
खंधा हु छप्पयारा, परमाणू चेव दुवियप्पो।।२०।।

अणु और स्कंधके विकल्पसे पुद्गल द्रव्य दो विकल्पवाला है। इनमें स्कंध छह प्रकारके हैं और अणु दो भेदोंसे युक्त है।

भावार्थ -- प्रथम ही पुद्गल द्रव्यके दो भेद हैं -- १. स्वभाव पुद्गल और २. विभाव पुद्गल। उनमें परमाणु स्वभाव पुद्गल है और स्कंध विभाव पुद्गल है। स्वभाव पुद्गलके कार्यपरमाणु और कारण परमाणुकी अपेक्षा दो भेद हैं तथा विभाव पुद्गल -- स्कंधके अतिस्थूल आदि छह भेद हैं। इन छह भेदोंके नाम तथा उदाहरण आगेकी गाथाओंमें स्पष्ट किये गये हैं।।२०।।

स्कंधोंके छह भेद

अइथूलथूल थूलं, थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च।
सुहुमं अइसुहुमं इदि, धरादियं होदि छब्भेयं।।२१।।

भूपव्वदमादीया, भणिदा अइथूलथूलमिदि खंधा।
थूला इदि विण्णेया, सप्पीजलतेलमादीया।।२२।।
छायातवमादीया, थूलेदरखंधमिदि वियाणाहि।
सुहुमथूलेदि भणिया, खंधा चउरक्खविसया य।।२३।।
सुहुमा हवंति खंधा, पावोग्गा कम्मवग्गणस्स पुणो।
तव्विवरीया खंधा, अइसुहुमा इदि परूवेंदि।।२४।।

अतिस्थूल, स्थूल, स्थूलसूक्ष्म, सूक्ष्मस्थूल, सूक्ष्म और अतिसूक्ष्म ऐसे पृथिवी आदि स्कंधके छह भेद हैं।।२१।।

भूमि पर्वत आदि अतिस्थूल स्कंध कहे गये हैं तथा घी, जल, तेल आदि स्थूल स्कंध हैं ऐसा जानना चाहिए।।२२।।

छाया आतप आदि स्थूलसूक्ष्म स्कंध हैं ऐसा जानो। तथा चार इंद्रियोंके विषय सूक्ष्मस्थूल स्कंध हैं ऐसा कहा गया है।।२३।।

कर्मवर्गणारूप होनेके योग्य स्कंध सूक्ष्म हैं और इनसे विपरीत अर्थात् कर्मवर्गणारूप न होनेके योग्य स्कंध अतिसूक्ष्म हैं ऐसा आचार्य निरूपण करते हैं।।२४।।

भावार्थ -- जो पृथक् करनेपर पृथक् हो जावें और मिलानेपर मिल न सकें ऐसे पुद्गल स्कंधोंको अतिस्थूलस्थूल कहते हैं, जैसे पृथिवी, पर्वत आदि। जो पृथक् करनेपर पृथक् हो जावें और मिलानेपर पुनः मिल जावें ऐसे पुद्गल स्कंधोंको स्थूल कहते हैं, जैसे घी, जल, तेल आदि तरल पदार्थ। जो नेत्रोंसे दिखायी तो देते हैं पर ग्रहण नहीं किये जा सकते ऐसे स्कंधोंको स्थूलसूक्ष्म कहते हैं, जैसे छाया, आतप आदि। जो नेत्रोंसे देखनेमें तो नहीं आते परंतु अपनी-अपनी इंद्रियों द्वारा ग्रहण किये जाते हैं ऐसे स्कंधोंको सूक्ष्मस्थूल कहते हैं, जैसे कर्ण, घ्राण, रसना और स्पर्शन इंद्रियके विषयभूत शब्द, गंध, रस और स्पर्श। जो कर्मवर्गणारूप परिणमन करनेके योग्य हैं ऐसे स्कंध सूक्ष्म कहलाते हैं, ये इंद्रियज्ञानके द्वारा नहीं जाने जाते मात्र कार्यद्वारा इनका अनुमान होता है। तथा जो इतने सूक्ष्म हैं कि कर्मवर्गणारूप परिणमन नहीं कर सकते उन्हें अतिसूक्ष्म स्कंध कहते हैं, ये अवधिज्ञानादि द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा जाने जाते हैं।।२१-२४।।

कारण परमाणु और कार्य परमाणु का लक्षण

धाउचउक्कस्स पुणो, जं हेऊ कारणंति तं णेयो।
खंधाणां अवसाणो, णादव्वो कज्जपरमाणू।।२५।।

जो पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार धातुओंका कारण है उसे कारण परमाणु जानना चाहिए और स्कंधोंके अवसानको अर्थात् स्कंधोंमें भेद होते-होते जो अंतिम अंश रहता है उसे कार्यपरमाणु जानना

चाहिए।

भावार्थ -- पृथिवी, जल, अग्नि और वायुका जो रूप अपने ज्ञानमें आता है वह अनेक परमाणुओंके मेलसे बना हुआ स्कंध है। इस स्कंधके बननेमें जो परमाणु मूल कारण हैं वे कारणपरमाणु कहलाते हैं। स्निग्ध और रूक्ष गुणके कारण परमाणु परस्परमें मिलकर स्कंध बनते हैं। जब उनमें स्निग्धता और रूक्ष गुणोंका नाश होता है तब विघटन होता है। इस तरह विघटन होते होते जो अंतिम अंश -- अविभाज्य अंश रह जाता है वह कार्य परमाणु कहलाता है।।२५।।

परमाणुका लक्षण

अत्तादि अत्तमज्झं, अत्तंतं णेव इंदिए गेज्झं।
अविभागी जं दव्वं, परमाणू तं वियाणाहि।।२६।।

आपही जिसका आदि है, आप ही जिसका मध्य है, आप ही जिसका अंत है, जो इंद्रियोंके द्वारा ग्रहणमें नहीं आता तथा जिसका दूसरा विभाग नहीं हो सकता उसे परमाणु द्रव्य जानो।

भावार्थ -- परमाणु एकप्रदेशी होनेसे उसमें आदि, मध्य और अंतका विभाग नहीं होता तथा उतना सूक्ष्म परिणमन है कि वह इंद्रियोंके द्वारा ग्राह्य नहीं होता। इसी तरह एकप्रदेशी होनेसे उसमें विभाग नहीं हो पाता है।।२६।।

परमाणुके स्वभावगुण और विभावगुणका वर्णन

एयरसरूवगंधं, दोफासं तं हवे सहावगुणं।
विहावगुणमिदि भणिदं, जिणसमये सव्वपयडत्तं।।२७।।

एक रस, एक रूप, एक गंध और दो स्पर्शोंसे युक्त जो परमाणु है वह स्वभावगुणवाला है और द्व्यणुक आदि स्कंध दशामें अनेक रस, अनेक रूप, अनेक गंध और अनेक स्पर्शवाला जो परमाणु है वह जिनशासनमें सर्वप्रकट रूपसे विभाव गुणवाला है ऐसा कहा गया है।

भावार्थ -- जो परमाणु स्कंध दशासे विघटित होकर एकप्रदेशीपनको प्राप्त हुआ है उसमें खट्टा, मीठा, कडुआ, कषायला और चिर्परा इन पाँच रसोंमेंसे कोई एक रस होता है, श्वेत, पीत, नील, लाल और कृष्ण इन पाँच वर्णोंमेंसे कोई एक वर्ण होता है, सुगंध दुर्गंध इन दो गंधोंमेंसे कोई एक गंध होता है और शीत उष्णसे कोई एक तथा स्निग्ध रूक्षमेंसे कोई एक इस प्रकार दो स्पर्श होते हैं। कर्कश, मृदु, गुरु और लघु ये चार स्पर्श आपेक्षिक होनेसे परमाणुमें विवक्षित नहीं है। इस प्रकार पाँच गुणोंसे युक्त परमाणु स्वभाव गुणवाला परमाणु कहा गया है, परंतु यही परमाणु जब स्कंध दशामें अनेक रस, अनेक रूप, अनेक गंध और अनेक स्पर्शोंसे युक्त होता है तब विभावगुण वाला कहा गया है। तात्पर्य यह है कि परमाणु स्वभाव पुद्गल है और स्कंध विभावपुद्गल है।।२७।।

पुद्‌गलकी स्वभाव पर्याय और विभाव पर्यायका वर्णन

अण्णणिरावेक्खो जो, परिणामो सो सहावपज्जायो।
खंधसरूवेण पुणो, परिणामो सो विहावपज्जायो।।२८।।

जो अन्यनिरपेक्ष परिणाम है वह स्वभावपर्याय है और स्कंधरूपसे जो परिणाम है वह विभाव पर्याय है।

भावार्थ -- पुद्‌गल द्रव्यका परमाणुरूप जो परिणमन है वह अन्य परमाणुओंसे निरपेक्ष होनेके कारण स्वभाव पर्याय है और स्कंधरूप जो परिणमन है वह अन्य परमाणुओंसे सापेक्ष होनेके कारण विभाव पर्याय है।।२८।।

परमाणुमें द्रव्यरूपताका वर्णन

पोग्गलदव्वं उच्चइ, परमाणू णिच्छएण इदरेण।
पोग्गलदव्वेत्ति पुणो, ववदेसो होदि खंधस्स।।२९।।

निश्चय नयसे परमाणुको पुद्‌गल द्रव्य कहा जाता है और व्यवहारसे स्कंधके 'पुद्‌गल द्रव्य है' ऐसा व्यपदेश होता है।

भावार्थ -- पुद्‌गल द्रव्यके परमाणु और स्कंधकी अपेक्षा दो भेद हैं। दोनों भेदोंमें द्रव्य और पर्यायरूपता है, क्योंकि द्रव्यके बिना पर्याय नहीं रहता और पर्यायके बिना द्रव्य नहीं रहता ऐसा आगमका उल्लेख है। यहाँ निश्चयनयकी अपेक्षा परमाणुको द्रव्य और स्कंधको पर्याय कहा गया है। स्कंधमें जो पुद्‌गल द्रव्यका व्यवहार होता है अथवा परमाणुमें जो पर्यायका व्यवहार होता है उसे व्यवहार नयका विषय बताया है, एतावता नयविवक्षासे दोनोंमें उभयरूपता है।।२९।।

धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्यका लक्षण

गमणणिमित्तं धम्ममधम्मं ठिदि जीवपुग्गलाणं च।
अवगहणं आयासं, जीवादीसव्वदव्वाणं।।३०।।

जो जीव और पुद्‌गलोंके गमनका निमित्त है वह धर्म है। जो जीव और पुद्‌गलोंकी स्थितिका निमित्त है वह अधर्म है। तथा जो जीवादि समस्त द्रव्योंके अवगाहनका निमित्त है वह आकाश है।

भावार्थ -- छह द्रव्योंमें सिर्फ जीव और पुद्‌गल द्रव्यमें क्रिया है, शेष चार द्रव्य क्रियारहित हैं। जिनमें क्रिया होती है उन्हींमें क्रियाका अभाव होनेपर स्थितिका व्यवहार होता है। इस तरह जीव और पुद्‌गल इन दो द्रव्योंकी क्रियामें जो प्रेरक तत्त्व है वह धर्म द्रव्य है तथा उन्हीं दो द्रव्योंमें जो अप्रेरक निमित्त है वह अधर्म द्रव्य है। अवगाहन समस्त द्रव्योंका होता है इसलिए आकाशका लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि जो जीवादि समस्त द्रव्योंके अवगाहन स्थान देनेमें निमित्त है वह आकाश द्रव्य है।।३०।।

व्यवहारकालका वर्णन

समयावलिभेदेण दु, दुवियप्पं अहव होइ तिवियप्पं।
तोदो संखेज्जावलिहदसंठाणप्पमाणं तु ।।३१।।

समय और आवलिके भेदसे व्यवहार कालके दो भेद हैं अथवा अतीत, वर्तमान और भविष्यत्के भेदसे तीन भेद हैं। उनमें काल, आवलि तथा हतसंस्थान अर्थात् संस्थानसे रहित सिद्धोंका जितना प्रमाण है उतना है।

भावार्थ -- व्यवहारकालसे समय और आवलिकी अपेक्षा दो भेद हैं। इनमें समय काल द्रव्यकी सबसे लघु पर्याय है। असंख्यात समयोंकी एक आवलि होती है। यहाँ आवलि, निमेष, काष्ठा, कला, नाड़ी, दिन रात आदिका उपलक्षण है। दूसरी विधिसे कालके भूत, वर्तमान और भविष्यत्की अपेक्षा तीन भेद हैं। इनमें भूतकाल संख्यात आवलि तथा सिद्धोंके बराबर है[१]।।३१।।

भविष्यत् तथा वर्तमान कालका लक्षण और निश्चयकालका स्वरूप

जीवा दु पुग्गलादोऽणंतगुणा भावि[२] संपदा समया।
लोयायासे संति य, परमट्ठो सो हवे कालो।।३२।।

भावी अर्थात् भविष्यत् काल जीव तथा पुद्गलसे अनंतगुणा है। संप्रति अर्थात् वर्तमान काल समयमात्र है। लोकाकाशके प्रदेशोंपर जो कालाणु हैं वह परमार्थ अर्थात् निश्चय काल है।।३२।।

जीवादि द्रव्योंके परिवर्तनका कारण तथा धर्मादि चार द्रव्योंकी स्वभाव गुणपर्यायरूपताका वर्णन

जीवादीदव्वाणं, परिवट्टणकारणं हवे कालो।
धम्मादिचउण्णाणं, सहावगुणपज्जया होंति।।३३।।

जीवादि द्रव्योंके परिवर्तनका कारण काल है। धर्मादिक चार द्रव्योंके स्वभाव गुण पर्यायें होती हैं।

---

१. यहाँ 'तीदो संखेज्जावलिहदसंठाणप्पमाणं तु' इस पाठके बदले गोम्मटसार जीवकांड में 'तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणं तु' ऐसा पाठ है जिसका अर्थ होता है -- संख्यात आवलिसे गुणित सिद्धोंका जितना प्रमाण है उतना अतीत काल है।

२. मुद्रित प्रतियोंमें 'चावि' पाठ है जोकि त्रुटिपूर्ण जान पड़ता है। वर्तमान और भविष्यत् कालका लक्षण जीवकांडमें भी इस प्रकार बताया है --

समओ दु वट्टमाणो जीवादो सव्वपुग्गलातो वि।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो।।५७८।।

वर्तमान काल समयमात्र है और भावीकाल जीवों तथा समस्त पुद्गल द्रव्योंसे अनंतगुणा है। इस प्रकार व्यवहार कालका वर्णन है।

भावार्थ --जीवादिक द्रव्योंमें जो समय-समयमें वर्तनारूप परिणमन होता है उसका निमित्त कारण काल द्रव्य है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चार द्रव्योंके जो गुण तथा पर्याय हैं वे सदा स्वभावरूप ही होते हैं, उनमें विभावरूपता नहीं आती।।३३।।

अस्तिकाय तथा उसका लक्षण

एदे छद्दव्वाणि य कालं मोत्तूण अत्थिकायत्ति।
णिद्दिट्ठा जिणसमये काया हु बहुपदेसत्तं।।३४।।

काल द्रव्यको छोड़कर ये छह द्रव्य जिनशासनमें 'अस्तिकाय' कहे गये हैं। बहुप्रदेशीपना कायद्रव्यका लक्षण है।

भावार्थ -- जिनागममें काल द्रव्यको छोड़कर शेष जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म और आकाश ये पाँच द्रव्य अस्तिकाय कहे कहे हैं। जिनमें बहुत प्रदेश हों उन्हें अस्तिकाय कहते हैं। काल द्रव्य एकप्रदेशी है अतः वह अस्तिकायमें सम्मिलित नहीं है।।३४।।

किस द्रव्यके कितने प्रदेश हैं इसका वर्णन

संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसा हवंति मुत्तस्स।
धम्माधम्मस्स पुणो, जीवस्स असंखदेसा हु।।३५।।
लोयायासे ताव, इदरस्स अणंतयं हवे देसा।
कालस्स ण कायत्तं, एयपदेसो हवे जम्हा।।३६।।

मूर्त अर्थात् पुद्‌गल द्रव्यके संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश होते हैं। धर्म, अधर्म तथा एक जीव द्रव्यके असंख्यात प्रदेश हैं। लोकाकाशमें धर्मादिकके समान असंख्यात प्रदेश हैं, परंतु अलोकाकाशमें अनंत प्रदेश हैं। काल द्रव्यमें कायपना नहीं है, क्योंकि वह एकप्रदेशी है।।३५-३६।।

द्रव्योंमें मूर्तिक तथा अमूर्तिक चेतनाका अभाव

पुग्गलदव्वं मोत्तं, मुत्तिविरहिया हवंति सेसाणि।
चेदणभावो जीवो, चेदणगुणवज्जिया सेसा।।३७।।

पुद्‌गल द्रव्य मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। जीव द्रव्य चेतन है और शेष द्रव्य चेतनागुणसे रहित हैं।।३७।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें
अजीवाधिकार नामका दूसरा अधिकार समाप्त हुआ।।२।।

***

३
शुद्ध भावाधिकार

हेय उपादेय तत्त्वोंका वर्णन

जीवादिबहित्तच्चं, हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो।।३८।।

जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं -- छोड़नेके योग्य हैं और कर्मरूप उपाधिसे उत्पन्न होनेवाले गुण तथा पर्यायोंसे रहित आत्मा आत्माके लिए उपादेय है -- ग्रहण करनेके योग्य है।।३८।।

निर्विकल्प तत्त्वका स्वरूप

णो खलु सहावठाणा, णो माणवमाणभावठाणा वा।
णो हरिसभावठाणा, णो जीवस्साहरिस्सठाणा वा।।३९।।

निश्चयसे जीवके स्वभावस्थान (विभाव स्वभावके स्थान) नहीं हैं, मान अपमान भावके स्थान नहीं हैं, हर्षभावके स्थान नहीं हैं तथा अहर्षभावके स्थान नहीं हैं।।३९।।

णो ठिदिबंधट्ठाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा।
जो अणुभागट्ठाणा, जीवस्स ण उदयठाणा वा।।४०।।

जीवके स्थितिबंधस्थान नहीं है, प्रकृतिस्थान नहीं है, प्रदेशस्थान नहीं है, अनुभागस्थान नहीं है और उदयस्थान नहीं है।

भावार्थ -- प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशकी अपेक्षा बंधके चार भेद हैं सो जीवके चारोंही प्रकारके बंधस्थान नहीं हैं। जब बंधस्थान नहीं हैं तब उनके उदयस्थान कैसे हो सकते हैं? वास्तवमें बंध और उदयकी अवस्था व्यवहारनयसे है, यहाँ निश्चयनयकी प्रधानतासे उसका निषेध किया गया है।।४०।।

णो खइयभावठाणा, णो खयउवसमसहावठाणा वा।
ओदइयभावठाणा, णो उवसमणे सहावठाणा वा।।४१।।

जीवके क्षायिक भावके स्थान नहीं हैं, क्षायोपशमिक स्वभावके स्थान नहीं हैं, औदयिक भावके स्थान नहीं है और औपशमिक स्वभावके स्थान नहीं हैं।

भावार्थ -- कर्मोंकी क्षय, क्षयोपशम, उपशम और उदयरूप अवस्थाओंमें होनेवाले भाव क्रमसे क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और औदयिक भाव कहलाते हैं। ये परनिमित्तसे होनेके कारण जीवके

स्वभावस्थान नहीं हैं। निश्चयनय जीवके कर्मबंधको स्वीकृत नहीं करता इसलिए कर्मोंके निमित्तसे होनेवाली अवस्थाएँ भी जीवकी नहीं हैं।।४१।।

चउगइभवसंभमणं, जाइजरामरणरोयसोका य।
कुलजोणिजीवमग्गणठाणा जीवस्स णो संति।।४२।।

जीवके चतुर्गतिरूप संसारमें परिभ्रमण, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, कुल, योनि, जीवस्थान और मार्गणास्थान नहीं हैं।।४२।।

णिद्दंडो णिद्दंदो, णिम्ममो णिक्कलो णिरालंबो।
णीरागो णिद्दोसो, णिम्मूढो णिब्भयो अप्पा।।४३।।

आत्मा निर्दंड -- मन वचन कायके व्यापारसे रहित है, निर्द्वंद्व है, निर्मम है, निष्कल -- शरीररहित है, निरालंब है, नीराग है, निर्मूढ़ है और निर्भय है।।४३।।

णिग्गंथो णीरागो, णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को।
णिक्कामो णिक्कोहो, णिम्माणो णिम्मदो अप्पा।।४४।।

आत्मा निर्ग्रंथ है, नीराग है, निःशल्य है, सकल दोषोंसे निर्मुक्त है, निष्काम है, निष्क्रोध है, निर्मान है और निर्मद है।।४४।।

वण्णरसगंधफासा, थीपुंसणओसयादिपज्जाया।
संठाणा संहणणा, सव्वे जीवस्स णो संति।।४५।।

वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, स्त्री, पुरुष, नपुंसकादि पर्याय, संस्थान और संहननादि पर्याय ये सभी जीवके नहीं हैं।।४५।।

तब फिर जीव कैसा है?

अरसमरूवमगंधं, अव्वत्तं चेदणागुणसमुद्दं।
जाण अलिंगग्गहणं, जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।४६।।

जीवको रसरहित, रूपरहित, गंधरहित (अतएव बाह्यमें) अव्यक्त -- अप्रकट, चेतनागुणसे सहित, शब्दरहित, लिंग अर्थात् इंद्रियोंके द्वारा अग्राह्य और किसी निर्दिष्ट आकारसे रहित जानो।।४६।।

जारिसिया सिद्धप्पा, भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जरमरणजम्ममुक्का, अट्ठगुणालंकिया जेण।।४७।।

जैसे सिद्धात्माएँ हैं वैसे ही संसारी जीव हैं, क्योंकि (स्वभावदृष्टिसे भी) जरा, मरण और जन्मसे रहित तथा सम्यक्त्वादि आठ गुणोंसे अलंकृत हैं।।४७।।

असरीरा अविणासा, अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।

जह लोयग्गे सिद्धा, तह जीवा संसिदी णेया।।४८।।

जिस प्रकार लोकाग्रमें स्थित सिद्ध भगवान् शरीररहित, अविनाशी, अतींद्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा हैं उसी प्रकार (स्वभावदृष्टिसे) संसारमें स्थित जीव जो शरीररहित, अविनाशी, अतींद्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा हैं।।४८।।

एदे सव्वे भावा, ववहारणयं पडुच्च भणिदा दु।
सव्वे सिद्धसहावा, शुद्धणया संसिदी जीवा।।४९।।

वास्तवमें ये सब भाव व्यवहारनयकी अपेक्षा कहे गये हैं। शुद्ध नयसे संसारमें रहनेवाले सब जीव सिद्ध स्वभाववाले हैं।

भावार्थ -- यद्यपि संसारी जीवकी वर्तमान पर्याय दूषित है तो भी उसे द्रव्य स्वभावकी अपेक्षा सिद्ध भगवान्के समान कहा गया है।।४९।।

परद्रव्य हेय है और स्वद्रव्य उपादेय है

पुव्वुत्तसयलभावा, परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं, अंतरतच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पहले कहे हुए समस्त भाव परद्रव्य तथा परस्वभाव हैं, इसलिए हेय हैं -- छोड़नेके योग्य हैं और आत्मा अंतस्तत्त्व -- स्वभाव तथा स्वद्रव्य है अतः उपादेय है।।५०।।

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके लक्षण तथा उनकी उत्पत्ति के कारण

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं।।५१।।
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियं सद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगमभावो णाणं, हेयोपादेयतच्चाणं।।५२।।
सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा, दंसणमोहस्स खयपहुदी।।५३।।
सम्मत्तं सण्णाणं, विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहारणिच्चएण दु, तम्हा चरणं पवक्खामि।।५४।।
ववहारणयचरित्ते, ववहारणयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छयणयचारित्ते, तवचरणं होदि णिच्छयदो।।५५।।

विपरीत अभिप्रायसे रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है तथा संशय, विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित

ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।।५१।।

(अथवा) चल, मलिन और अगाढत्व दोषोंसे रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है और हेयोपादेय तत्त्वोंका ज्ञान होना ही सम्यग्ज्ञान है।।५२।।

सम्यक्त्वका बाह्य निमित्त जिनसूत्र -- जिनागम और उसके ज्ञायक पुरुष हैं तथा अंतरंग निमित्त दर्शनमोहनीय कर्मका क्षय आदि कहा गया है।

भावार्थ -- निमित्त कारणके दो भेद हैं -- एक बहिरंग निमित्त और दूसरा अंतरंग निमित्त। सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका बहिरंग निमित्त जिनागम और ज्ञाता पुरुष हैं तथा अंतरंग निमित्त दर्शनमोहनीय अर्थात् मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्व प्रकृति एवं अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन प्रकृतियोंका उपशम, क्षय और क्षयोपशमका होना है। बहिरंग निमित्तके मिलनेपर कार्यकी सिद्धि होती भी है और नहीं भी होती, परंतु अंतरंग निमित्तके मिलनेपर कार्यकी सिद्धि नियमसे होती है।।५३।।

सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञान तो मोक्षके लिए हैं ही। सुन, सम्यक्चारित्र भी मोक्षके लिए है इसलिए मैं व्यवहार और निश्चय नयसे सम्यक्चारित्रको कहूँगा।

भावार्थ -- मोक्षप्राप्तिके लिए जिस प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्ज्ञान आवश्यक कहे गये हैं उसी प्रकार सम्यक्चारित्रको आवश्यक कहा गया है, इसलिए यहाँ व्यवहार और निश्चय दोनों नयोंके आलंबनसे सम्यक्चारित्रको कहूँगा।।५४।।

व्यवहार नयके चारित्रमें व्यवहार नयका तपश्चरण होता है और निश्चयनयके चारित्रमें निश्चय नयका तपश्चरण होता है।

भावार्थ -- व्यवहार नयसे पापक्रियाके त्यागको चारित्र कहते हैं इसलिए इस चारित्रमें व्यवहार नयके विषयभूत अनशन-ऊनोदर आदिको तप कहा जाता है। तथा निश्चय नयसे निजस्थितिमें अविचल स्थितिको चारित्र कहा जाता है इसलिए इस चारित्रमें निश्चयनयके विषयभूत सहज निश्चयनयात्मक परमभाव स्वरूप परमात्मामें प्रतपनको तप कहा गया है।।५५।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें शुद्धभावाधिकार

नामका तीसरा अधिकार समाप्त हुआ।।३।।

***

४

व्यवहारचारित्राधिकार

अहिंसा महाव्रतका स्वरूप

कुलजोणिजीवमग्गणठाणाइसु जाणिऊण जीवाणं।
तस्सारंभणियत्तणपरिणामो होइ पढमवदं।।५६।।

कुल, योनि, जीवसमास तथा मार्गणास्थान आदिमें जीवोंका ज्ञान कर उनके आरंभसे निवृत्तिरूप जो परिणाम है वह पहला अहिंसा महाव्रत है।

सत्य महाव्रतका स्वरूप

रागेण व दोसेण व, मोहेण व मोसभासपरिणामं।
जो पजहदि साहु सया, बिदियवयं होइ तस्सेव।।५७।।

जो साधु रागसे , दोषसे अथवा मोहसे असत्य भाषाके परिणामको छोड़ता है उसीके सदा दूसरा सत्य महाव्रत होता है।।५७।।

अचौर्य महाव्रतका स्वरूप

गामे वा णयरे वा, रण्णे वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुचदि गहणभावं, तिदियवदं होदि तस्सेव।।५८।।

जो ग्राममें, नगरमें अथवा वनमें परकीय वस्तुको देखकर उसके ग्रहणके भावको छोड़ता है उसीके तीसरा अचौर्य महाव्रत होता है।।५८।।

ब्रह्मचर्य महाव्रतका स्वरूप

दट्ठूण इच्छिरूवं, वांछाभावं णिवत्तदे तासु।
मेहुणसण्ण विवज्जिय, परिणामो अह तुरीयवदं।।५९।।

जो स्त्रियोंके रूपको देखकर उनमें वांछाभावको छोड़ता है अथवा मैथुन संज्ञासे रहित जिसके परिणाम हैं उसीके चौथा महाव्रत होता है।।५९।।

परिग्रहत्याग महाव्रतका स्वरूप

सव्वेसिं गंथाणं, तागो णिरवेक्खभावणापुव्वं।
पंचमवदमिदि भणिदं, चारित्तभरं वहंतस्स।।६०।।

निरपेक्ष भावनापूर्वक अर्थात् संसारसंबंधी किसी भोगोपभोग अथवा मान सम्मानकी इच्छा नहीं

रखते हुए समस्त परिग्रहोंका जो त्याग है, चारित्रके भारको धारण करनेवाले मुनिका वह पाँचवाँ परिग्रहत्याग महाव्रत कहा गया है।।६०।।

ईर्यासमितिका स्वरूप

पासुगमग्गेण दिवा, अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि।
गच्छइ पुरदो समणो, इरियासमिदी हवे तस्स।।६१।।

जो साधु दिनमें प्रासुक -- जीवजंतुररहित मार्गसे युगप्रमाण -- चार हाथ प्रमाण भूमिको देखता हुआ आगे चलता है उसके ईर्या समिति होती है।।६१।।

भाषासमितिका स्वरूप

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं।
परिचत्ता सपरहिदं, भासासमिदी वदंतस्स।।६२।।

पैशुन्य - चुगली, हास्य, कर्कश, परनिंदा और आत्मप्रशंसारूप वचनको छोड़कर स्वपर हितकारी वचनको बोलनेवाले साधुके भाषासमिति होती है।।६२।।

एषणासमितिका स्वरूप

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।
दिण्णं परेण भत्तं, समभुत्ती एसणासमिदी।।६३।।

परके द्वारा दिये हुए, कृत कारित अनुमोदनासे रहित, प्रासुक तथा प्रशस्त आहारको ग्रहण करनेवाले साधुके एषणासमिति होती है।।६३।।

आदाननिक्षेपण समितिका स्वरूप

पोथइकमंडलाइं, गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो।
आदावणणिक्खेवणसमिदी होदित्ति णिद्दिट्ठा।।६४।।

पुस्तक तथा कमंडलु आदिको ग्रहण करते समय अथवा रखते समय जो प्रमादरहित परिणाम है वह आदान-निक्षेपण समिति होती है ऐसा कहा गया है।।६४।।

प्रतिष्ठापन समितिका स्वरूप

पासुगभूमिपदेसे, गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो, पइठासमिदी हवे तस्स।।६५।।

परकी रुकावटसे रहित, गूढ और प्रासुक भूमिप्रदेशमें जिसके मल आदिकका त्याग हो उसके प्रतिष्ठापन समिति होती है।।६५।।

मनोगुप्तिका लक्षण

कालुस्समोहसण्णारागद्दोसाइअसुहभावाणं।

परिहारो मणगुत्ती, ववहारणयेण परिकहियं।।६६।।

कलुषता, मोह, संज्ञा, राग, द्वेष आदि अशुभ भावोंका जो त्याग है उसे व्यवहार नयसे मनोगुप्ति कहा गया है।।६६।।

वचनगुप्तिका लक्षण

थीराजचोरभत्तकहादिवयणस्स पावहेउस्स।

परिहारो वचगुत्ती, अलीयादिणियत्तिवयणं वा।।६७।।

पापके कारणभूत स्त्री, राज, चोर और भोजन कथा आदि संबंधी वचनोंका परित्याग अथवा असत्य आदिके त्यागरूप जो वचन वह वचनगुप्ति है।।६७।।

कायगुप्तिका लक्षण

बंधणछेदणमारण, आकुंचण तह पसारणादीया।

कायकिरियाणियत्ती, णिद्दिट्ठा कायगुत्तित्ति।।६८।।

बाँधना, छेदना, मारना, सकोड़ना तथा पसारना आदि शरीरसंबंधी क्रियाओंसे निवृत्ति होना कायगुप्ति कही गयी है।।६८।।

निश्चयनयसे मनोगुप्ति और वचनगुप्तिका स्वरूप

जा रायादिणियत्ती, मणस्स जाणीहि तम्मणोगुत्ती।

अलियादिणियत्तिं वा, मोणं वा होइ वदिगुत्ती।।६९।।

मनकी जो रागादि परिणामोंसे निवृत्ति है उसे मनोगुप्ति जानो और असत्यादिकसे निवृत्ति अथवा मौन धारण करना वचनगुप्ति है।।६९।।

निश्चयनयसे कायगुप्तिका स्वरूप

कायकिरियाणियत्ती, काउस्सग्गो सरीरगे गुत्ती।

हिंसाइणियत्ती वा, सरीरगुत्तित्ति णिद्दिट्ठा।।७०।।

शरीरसंबंधी क्रियाओंका त्याग करना अथवा कायोत्सर्ग करना कायगुप्ति है अथवा हिंसादि पापोंसे निवृत्ति होना कायगुप्ति है ऐसा कहा गया है।।७०।।

अर्हत् परमेश्वरका स्वरूप

घणघाइकम्मरहिया, केवलणाणाइ परमगुणसहिया।

चोत्तिसअदिसअजुत्ता, अरिहंता एरिसा होंति।।७१।।

घन -- अत्यंत अहितकारी घातिया कर्मोंसे रहित, केवलज्ञानादि परम गुणोंसे सहित और चौंतीस अतिशयोंसे सहित ऐसे अरहंत होते हैं।।७१।।

सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मबंधा, अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, सिद्धा ते एरिसा होंति।।७२।।

जिन्होंने अष्ट कर्मोंका बंध नष्ट कर दिया है, जो आठ महागुणोंसे सहित हैं, उत्कृष्ट हैं, लोकके अग्रभागमें स्थित हैं तथा नित्य हैं वे ऐसे सिद्ध परमेष्ठी होते हैं।।७२।।

आचार्य परमेष्ठीका स्वरूप

पंचाचारसमग्गा, पंचिंदियदंतिदप्पणिद्दलणा।
धीरा गुणगंभीरा, आयरिया एरिसा होंति।।७३।।

जो पाँच प्रकारके (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य) आचारोंसे परिपूर्ण हैं, पाँच इंद्रियरूपी हस्तियोंके गर्वको चूर करनेवाले हैं, धीर हैं तथा गुणोंसे गंभीर हैं ऐसे आचार्य होते हैं।।७३।।

उपाध्याय परमेष्ठीका स्वरूप

रयणत्तयसंजुत्ता, जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया, उवज्झाया एरिसा होंति।।७४।।

जो रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) से संयुक्त हैं, जो जिनेंद्र भगवान्के द्वारा कहे हुए पदार्थोंका उपदेश करनेवाले हैं, शूरवीर हैं, परिषह आदिके सहनेमें समर्थ हैं तथा निष्कांक्षभावसे सहित हैं अर्थात् जो उपदेशके बदले किसी पदार्थकी इच्छा नहीं रखते हैं ऐसे उपाध्याय होते हैं।।७४।।

साधु परमेष्ठीका स्वरूप

वावारविप्पमुक्का, चउव्विहाराहणासयारत्ता।
णिग्गंथा णिम्मोहा, साहू एदेरिसा होंति।।७५।।

जो व्यापारसे सर्वथा रहित हैं, चार प्रकारकी (दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप) आराधनाओंमें सदा लीन रहते हैं, परिग्रह रहित हैं तथा निर्मोह हैं ऐसे साधु होते हैं।।७५।।

व्यवहारनयके चारित्रका समारोप कर निश्चयनयके चारित्रका वर्णन करनेकी प्रतिज्ञा

एरिसयभावणाए, ववहारणयस्स होदि चारित्तं।
णिच्छयणयस्स चरणं, एत्तो उड्ढं पवक्खामि।।७६।।

इस प्रकारकी भावनासे व्यवहार नयका चारित्र होता है, अब इसके आगे निश्चय नयके चारित्रको कहूँगा।।७६।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंद आचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें व्यवहारचारित्राधिकार नामका चौथा अधिकार समाप्त हुआ।।४।।

५

परमार्थप्रतिक्रमणाधिकार

णाहं णारयभावो, तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।७७।।
णाहं मग्गणठाणो, णाहं गुणठाण जीवठाणो ण।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।७८।।
णाहं बालो वुड्ढो, ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।७९।।
णाहं रागो दोसो, ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।८०।।
णाहं कोहो माणो, ण चेव माया ण होमि लोहोहं।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं।।८१।।

मैं नारक पर्याय, तिर्यंच पर्याय, मनुष्य पर्याय अथवा देव पर्याय नहीं हूँ। निश्चयसे मैं उनका न कर्ता हूँ, न करानेवाला हूँ और न करनवालोंकी अनुमोदना करनेवाला हूँ।।७७।।

मैं मार्गणास्थान नहीं हूँ, गुणस्थान नहीं हूँ और न जीवस्थान हूँ। निश्चयसे मैं उनका न करनेवाला हूँ, न करानेवाला हूँ और न करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाला हूँ।।७८।।

मैं बालक नहीं हूँ, वृद्ध नहीं हूँ, तरुण नहीं हूँ और न उनका कारण हूँ। निश्चयसे मैं उनका न करनेवाला हूँ, न करानेवाला हूँ और न करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाला हूँ।।७९।।

मैं राग नहीं हूँ, द्वेष नहीं हूँ, मोह नहीं हूँ और न उनका कारण हूँ। निश्चयसे मैं उनका न करनेवाला हूँ, न करानेवाला हूँ और करनंवालोंकी अनुमोदना करनेवाला नहीं हूँ।।८०।।

मैं क्रोध नहीं हूँ, मान नहीं हूँ, माया नहीं हूँ और लोभ नहीं हूँ। मैं उनका करनेवाला नहीं हूँ, करानेवाला नहीं हूँ और करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाला नहीं हूँ।।८१।।

एरिसभेदब्भासे, मज्झत्थो होदि तेण चारित्तं।

तं दढकरणणिमित्तं, पडिक्कमणादी पवक्खामि।।८२।।

इस प्रकारके भेदज्ञानका अभ्यास होनेपर जीव मध्यस्थ होता है और उस मध्यस्थभावसे चारित्र होता है। आगे उसी चारित्रमें दृढ़ करनेके लिए प्रतिक्रमण आदिको कहूँगा।।८२।।

प्रतिक्रमण किसके होता है?

मोत्तूण वयणरयणं, रागादीभाववारणं किच्चा।

अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु होदित्ति पडिकमणं।।८३।।

जो वचनोंकी रचनाको छोड़कर तथा रागादिभावोंका निवारणकर आत्माका ध्यान करता है उसके प्रतिक्रमण होता है।।८३।।

आराहणाइ वट्टइ, मोत्तूण विराहणं विसेसेण।

सो पडिकमणं उच्चइ, पडिक्कमणमओ हवे जम्हा।।८४।।

जो विराधनाको विशेष रूपसे छोड़कर आराधनामें वर्तता है वह साधु प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।

भावार्थ -- यहाँ अभेद विवक्षाके कारण प्रतिक्रमण करनेवाले साधुको ही प्रतिक्रमण कहा गया है।।८४।।

मोत्तूण अणायारं, आयारे जो दु कुणदि थिरभावं।

सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८५।।

जो साधु अनाचारको छोड़कर आचारमें स्थिरभाव करता है वह प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।।८५।।

उम्मग्गं परिचत्ता, जिणमग्गे जो दु कुणदि थिरभावं।

सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८६।।

जो उन्मार्गको छोड़कर जिनमार्गमें स्थिरभाव करता है वह प्रतिक्रमण कहलाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।।८६।।

मोत्तूण सल्लभावं, णिस्सल्ले जो दु साहु परिणमदि।

सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८७।।

जो साधु शल्यभावको छोड़कर निःशल्यभावमें परिणमन करता है -- उसरूप प्रवृत्ति करता है वह प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय है।।८७।।

चत्ता ह्यगुत्तिभावं, तिगुत्तिगुत्तो हवेइ जो साहू।

सो पडिकमणं उच्चइ, पडिकमणमओ हवे जम्हा।।८८।।

जो साधु अगुप्तिभावको छोड़कर तीन गुप्तियोंसे गुप्त -- सुरक्षित रहता है वह प्रतिक्रमण कहा जाता है, क्योंकि वह प्रतिक्रमणमय होता है।।८८।।

मोत्तूण अट्टरुद्दं, झाणं जो झादि धम्मसुक्कं वा।

सो पडिकमणं उच्चइ, जिणवरणिद्दिट्ठसुत्तेसु।।८९।।

जो आर्त और रौद्र ध्यानको छोड़कर धर्म्य अथवा शुक्ल ध्यान करता है वह जिनेंद्र भगवान्के द्वारा कथित शास्त्रोंमें प्रतिक्रमण कहा जाता है।।८९।।

मिच्छत्तपहुदिभावा, पुव्वं जीवेण भाविया सुइरं।

सम्मत्तपहुदिभावा, अभाविया होंति जीवेण।।९०।।

जीवने पहले चिरकालतक मिथ्यात्व आदि भाव भाये हैं। सम्यक्त्व आदि भाव जीवने नहीं भाये हैं।।९०।।

मिच्छादंसणणाणचरित्तं चइऊण णिरवसेसेण।

सम्मत्तणाणचरणं, जो भावइ सो पडिक्कमणं।।९१।।

जो संपूर्ण रूपसे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रको छोड़कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी भावना करता है वह प्रतिक्रमण है।।९१।।

आत्मध्यान ही प्रतिक्रमण है

उत्तमअट्ठं आदा, तम्हि ठिदा हणदि मुणिवरा कम्मं।

तम्हा दु झाणमेव हि, उत्तमअट्ठस्स पडिकमणं।।९२।।

उत्तमार्थ आत्मा है, उसमें स्थिर मुनिवर कर्मका घात करते हैं इसलिए उत्तमार्थ -- उत्कृष्ट पदार्थ आत्माका ध्यान करना ही प्रतिक्रमण है।।९२।।

झाणणिलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं।

तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिकमणं।।९३।।

ध्यानमें विलीन साधु सब दोषोंका परित्याग करता है इसलिए निश्चयसे ध्यान ही सब अतिचारों -- समस्त दोषोंका प्रतिक्रमण है।।९३।।

व्यवहार प्रतिक्रमणका वर्णन

पडिकमणणामधेये, सुत्ते जह वण्णिदं पडिक्कमणं।

तह णच्चा जो भावइ, तस्स सदा होइ पडिक्कमणं।।९४।।

प्रतिक्रमण नामक शास्त्रमें जिस प्रकार प्रतिक्रमणका वर्णन किया है उसे जानकर जो उसकी भावना करता है उस समय उसके प्रतिक्रमण होता है।।९४।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें परमार्थप्रतिक्रमण नामका पाँचवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।।५।।

***

६

निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार

मोत्तूण सयलजप्पमणागयसुहमसुहवारणं किच्चा।
अप्पाणं जो झायदि, पच्चक्खाणं हवे तस्स।।९५।।

जो समस्त वचनजालको छोड़कर तथा आगामी शुभ-अशुभका निवारण कर आत्माका ध्यान करता है उसके प्रत्याख्यान होता है।।९५।।

आत्माका ध्यान किस प्रकार किया जाता है?

केवलणाणसहावो, केवलदंसणसहाव सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतए णाणी।।९६।।

ज्ञानी जीवको इस प्रकार चिंतन करना चाहिए कि मैं केवलज्ञानस्वभाव हूँ, केवलदर्शनस्वभाव हूँ, सुखमय हूँ और केवलशक्तिस्वभाव हूँ।

भावार्थ -- ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ही मेरे स्वभाव हैं, अन्य भाव विभाव हैं। इस प्रकार ज्ञानी जीव आत्माका ध्यान करते हैं।।९६।।

णियभावं णइ मुच्चइ, परभावं णेव गेण्हए केइं।
जाणदि पस्सदि सव्वं, सोहं इदि चिंतए णाणी।।९७।।

जो निजभावको नहीं छोड़ता है, परभावको कुछ भी ग्रहण नहीं करता है, मात्र सबको जानता देखता है वह मैं हूँ, इस प्रकार ज्ञानी जीवको चिंतन करना चाहिए।।९७।।

पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसबंधेहिं वज्जिदो अप्पा।
सोहं इदि चिंतिज्जो, तत्थेव य कुणदि थिरभावं।।९८।।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंधोंसे रहित जो आत्मा है वही मैं हूँ इस प्रकार चिंतन करता हुआ ज्ञानी जीव उसी आत्मामें स्थिरभावको करता है।।९८।।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।

आलंबणं च मे आदा, अवसेसं च वोसरे।।९९।।

मैं ममत्वको छोड़ता हूँ और निर्ममत्वमें स्थित होता हूँ, मेरा आलंबन आत्मा है और शेष सबका परित्याग करता हूँ।।९९।।

आदा खु मज्झ णाणे, आदा मे दंसणे चरित्ते य।

आदा पच्चक्खाणे, आदा मे संवरे जोगे।।१००।।

निश्चयसे मेरा आत्मा ही ज्ञानमें है, मेरा आत्माही दर्शन और चारित्रमें है, आत्मा ही प्रत्याख्यानमें है और आत्मा ही संवर तथा योग -- शुद्धोपयोगमें है।

भावार्थ -- गुण-गुणीमें अभेद कर आत्माहीको ज्ञान, दर्शन, चारित्र, प्रत्याख्यान, संवर तथा शुद्धोपयोगरूप कहा है।।१००।।

जीव अकेला ही जन्म मरण करता है

एगो य मरदि जीवो, एगो य जीवदि सयं।

एगस्स जादि मरण, एगो सिज्झदि णीरयो।।१०१।।

यह जीव अकेला ही मरता है और अकेला ही स्वयं जन्म लेता है। एकका मरण होता है और एक ही कर्मरूपी रजसे रहित होता हुआ सिद्ध होता है।।१०१।।

ज्ञानी जीवकी भावना

एको मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।

सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा।।१०२।।

ज्ञान दर्शनवाला, शाश्वत एक आत्मा ही मेरा है। संयोगलक्षणवाले शेष समस्त भाव मुझसे बाह्य हैं।।१०२।।

आत्मगत दोषोंसे छूटने का उपाय

जं किंचि मे दुच्चरितं, सव्वं तिविहेण वोसरे।

सामाइयं तु तिविहं, करेमि सव्वं णिरायारं।।१०३।।

मेरा जो कुछ भी दुश्चारित्र -- अन्यथा प्रवर्तन है उस सबको त्रिविध -- मन वचन कायसे छोड़ता हूँ और जो त्रिविध (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि के भेदसे तीन प्रकारका) चारित्र है उस सबको निराकार -- निर्विकल्प करता हूँ।।१०३।।

सम्मं मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केणवि।
आसाए वोसरित्ता णं, समाहि पडिवज्जए।।१०४।।

मेरा सब जीवोंमें साम्यभाव है, मेरा किसीके साथ वैर नहीं है। वास्तवमें आशाओंका परित्याग कर समाधि प्राप्त की जाती है।।१०४।।

निश्चय प्रत्याख्यानका अधिकारी कौन है?

णिक्कसायस्स दंतस्स, सूरस्स ववसायिणो।
संसारभयभीदस्स, पच्चक्खाणं सुहं हवे।।१०५।।

जो निष्कषाय है, इंद्रियोंका दमन करनेवाला है, समस्त परिषहोंको सहन करनेमें शूरवीर है, उद्यमशील है तथा संसारके भयसे भीत है उसीके सुखमय प्रत्याख्यान -- निश्चय प्रत्याख्यान होता है।।

एवं भेदब्भासं, जो कुव्वइ जीवकम्मणो णिच्च।
पच्चक्खाणं सक्कदि, धरिदे सो संजदो णियमा ।।१०६।।

इस प्रकार जो निरंतर जीव और कर्मके भेदका अभ्यास करता है वह संयत -- साधु नियमसे प्रत्याख्यान धारण करनेको समर्थ है।।१०६।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें निश्चयप्रत्याख्यानाधिकार नामका छठवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।।६।।

***

७

परमालोचनाधिकार

आलोचना किसके होती है ?

णोकम्मकम्मरहियं, विहावगुणपज्जएहिं वदिरित्तं।
अप्पाणं जो झायदि, समणस्सालोयणं होदि।।१०७।।

जो नोकर्म और कर्मसे रहित तथा विभावगुणपर्यायोंसे भिन्न आत्माका ध्यान करता है उस साधुके आलोचना होती है।।१०७।।

आलोचनाके चार रूप

आलोयणमालुंछणवियडीकरणं च भावसुद्धी य।
चउविहमिह परिकहियं, आलोयणलक्खणं समए।।१०८।।

आलोचन, आलुंछन, अविकृतीकरण और भावशुद्धि इस तरह आगममें आलोचनाका लक्षण चार प्रकारका कहा गया है।।१०८।।

आलोचनका स्वरूप

जो पस्सदि अप्पाणं, समभावे संठवित्तु परिणामं।
आलोयणमिदि जाणह, परमजिणंदस्स उवएसं।।१०९।।

जो जीव अपने परिणामको समभावमें स्थापित कर अपने आत्माको देखता है -- उसके वीतरागभावका चिंतन करता है वह आलोचन है ऐसा परम जिनेंद्रका उपदेश जानो।।१०९।।

आलुंछनका स्वरूप

कम्ममहीरुहमूलच्छेदसमत्थो सकीय परिणामो।
साहीणो समभावो, आलुंछणमिदि समुद्दिट्ठं।।११०।।

कर्मरूप वृक्षका मूलच्छेद करनेमें समर्थ, स्वाधीन, समभावरूप जो अपना परिणाम है वह आलुंछन इस नामसे कहा गया है।.११०।।

अविकृतीकरणका स्वरूप

कम्मादो अप्पाणं, भिण्णं भावेइ विमलगुणणिलयं।
मज्झत्थभावणाए, वियडीकरणं त्ति विण्णेयं।।१११।।

जो मध्यस्थभावनामें कर्मसे भिन्न तथा निर्मलगुणोंके निवासस्वरूप आत्माकी भावना करता है उसकी वह भावना अविकृतीकरण है ऐसा जानना चाहिए।।१११।।

भावशुद्धिका स्वरूप

मदमाणमायलोहविवज्जियभावो दु भावसुद्धि त्ति।
परिकहियं भव्वाणं, लोयालोयप्पदरिसीहिं।।११२।।

भव्य जीवोंका मद, मान, माया और लोभसे रहित जो भाव है वह भावशुद्धि है ऐसा लोकालोकको देखनेवाले सर्वज्ञ भगवान्ने कहा है।।११२।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें
परमालोचनाधिकार नामका सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।।७।।

***

८

शुद्धनिश्चयप्रायश्चित्ताधिकार

निश्चय प्रायश्चित्तका स्वरूप

वदसमिदिसीलसंजमपरिणामो करणणिग्गहो भावो।
सो हवदि पायछित्तं, अणवरयं चेव कायव्वो।।११३।।

व्रत, समिति, शील और संयमरूप परिणाम तथा इंद्रियनिग्रहरूप जो भाव है वह प्रायश्चित्त है। यह प्रायश्चित्त निरंतर करनेयोग्य है।।११३।।

कोहादिसगब्भावक्खयपहुदिभावणाए णिग्गहणं।
पायच्छित्तं भणिदं, णियगुणचिंता य णिच्छयदो।।११४।।

क्रोधादिक स्वकीय विभाव भावोंके क्षय आदिककी भावनामें लीन रहना तथा निजगुणोंका चिंतन करना निश्चयसे प्रायश्चित्त कहा गया है।।११४।।

कषायोंपर विजय प्राप्त करनेका उपाय

कोहं खमया माणं, समद्दवेणज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं, जयदि खु ए चहुविहकसाए।।११५।।

क्रोधसे क्षमाको, मानको स्वकीय मार्दव धर्मसे, मायाको आर्जवसे और लोभको संतोषसे इस तरह चार कषायोंको जीव निश्चयसे जीतता है।।११५।।

निश्चय प्रायश्चित्त किसके होता है?

उक्किट्ठो जो बोहो, णाणं तस्सेव अप्पणो चित्तं।
जो धरइ मुणी णिच्चं, पायच्छित्तं हवे तस्स।।११६।।

उसी आत्माका जो उत्कृष्ट बोध, ज्ञान अथवा चिंतन है उसे जो मुनि निरंतर धारण करता है उसके प्रायश्चित्त होता है।।११६।।

किं बहुणा भणिएण दु, वरतवचरणं महेसिणं सव्वं।
पायच्छित्तं जाणह, अणेयकम्माण खयहेऊ।।११७।।

बहुत कहनेसे क्या? महर्षियोंका जो उत्कृष्ट तपश्चरण है उस सबको तू अनेक कर्मोंके क्षयका कारण प्रायश्चित्त जान।।११७।।

तप प्रायश्चित्त क्यों है?

णंताणंतभवेण, समज्जिअसुहअसुहकम्मसंदोहो।

तवचरणेण विणस्सदि, पायच्छित्तं तवं तम्हा।।११८।।

क्योंकि अनंतानंत भवोंके द्वारा उपार्जित शुभ-अशुभ कर्मोंका समूह तपश्चरणके द्वारा विनष्ट हो जाता है इसलिए तप प्रायश्चित्त है।।११८।।

ध्यान ही सर्वस्व क्यों है?

अप्पसरूवालंबणभावेण दु सव्वभावपरिहारं।

सक्कदि काउं जीवो, तम्हा झाणं हवे सव्वं।।११९।।

आत्मस्वरूपका अवलंबन करनेवाले भावसे जीव समस्त विभाव भावोंका निराकरण करनेमें समर्थ होता है इसलिए ध्यान ही सबकुछ है।।११९।।

सुहअसुहवयणरयणं, रायादीभाववारणं किच्चा।

अप्पाणं जो झायदि, तस्स दु णियमं हवे णियमा।।१२०।।

शुभ-अशुभ वचनोंकी रचना तथा रागादिक भावोंका निवारण कर जो आत्माका ध्यान करता है उसके नियमसे नियम अर्थात् रत्नत्रय होता है।।१२०।।

कायोत्सर्ग किसके होता है?

कायाईपरदव्वे, थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।

तस्स हवे तणुसग्गं, जो झायइ णिव्विअप्पेण।।१२१।।

जो शरीर आदि परद्रव्यमें स्थिरभावको छोड़कर निर्विकल्प रूपसे आत्माका ध्यान करता है उसके कायोत्सर्ग होता है।।१२१।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें शुद्ध निश्चय प्रायश्चित्ताधिकार नामका आठवाँ अधिकार समाप्त हुआ।।८।।

***

९

परमसमाध्यधिकार

वयणोच्चारणकिरियं, परिचत्ता वीयरायभावेण।
जो झायदि अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स।।१२२।।

जो वचनोच्चारणकी क्रियाको छोड़कर वीतराग भावसे आत्माका ध्यान करता है उसके परमसमाधि होती है।।१२२।।

संयमणियमतवेण दु, धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स।।१२३।।

जो संयम, नियम और तपसे तथा धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानके द्वारा आत्माका ध्यान करता है उसके परमसमाधि होती है।।१२३।।

समताके बिना सब व्यर्थ है --

किं काहदि वणवासो, कायकलेसो विचित्तउववासो।
अज्झयणमोणपहुदी, समदा रहियस्स समणस्स।।१२४।।

समताभावसे रहित साधुका वनवास, कायक्लेश, नाना प्रकारका उपवास तथा अध्ययन और मौन आदि धारण करना क्या करता है? कुछ नहीं।।१२४।।

स्थायी सामायिक व्रत किसके होता है?

विरदो सव्वसावज्जे, तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
तस्स सामाइगं ठाइ, इदि केवलिसासणे।।१२५।।

जो समस्त सावद्य -- पापसहित कार्योंमें विरत है, तीन गुप्तियोंको धारण करनेवाला है तथा जिसने इंद्रियोंको निरुद्ध कर लिया है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्के शासनमें कहा गया है।।१२५।।

जो समो सव्वभूदेसु, थावरेसु तसेसु वा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१२६।।

जो स्थावर अथवा त्रस सब जीवोंमें समभाववाला है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्के शासनमें कहा गया है।।१२६।।

जस्स सण्णिहिदो अप्पा, संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१२७।।

जिसका आत्मा संयम, नियम तथा तपमें सन्निहित रहता है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्‌के शासनमें कहा गया है।।१२७।।

जस्स रागो दु दोसो दु, विगडिं ण जणेदि दु।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१२८।।

राग और द्वेष जिसके विकार उत्पन्न नहीं करते हैं उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्‌के शासनमें कहा गया है।।१२८।।

जो दु अट्टं च रुद्दं च, झाणं वच्चेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१२९।।

जो निरंतर आर्त और रौद्र ध्यानका परित्याग करता है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्‌के शासनमें कहा गया है।।१२९।।

जो दु पुण्णं च पावं च, भावं वच्चेदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१३०।।

जो निरंतर पुण्य और पापरूप भावको छोड़ता है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्‌के शासनमें कहा गया है।।१३०।।

जो दु हस्सं रई सोगं, अरतिं वज्जेदि णिच्चसा ।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१३१।।
जो दुगंछा भयं वेदं, सव्वं वज्जदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१३२।।

जो निरंतर हास्य, रति, शोक और अरतिका परित्याग करता है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्‌के शासनमें कहा गया है।।१३१।।

जो निरंतर जुगुप्सा, भय और सब प्रकारके वेदोंको छोड़ता है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली भगवान्‌के शासनमें कहा गया है।।१३२।।

जो दु धम्मं च सुक्कं, झाणं झाएदि णिच्चसा।
तस्स सामाइगं ठाई, इदि केवलिसासणे।।१३३।।

जो निरंतर धर्म्य और शुक्ल ध्यानका ध्यान करता है उसके स्थायी सामायिक होता है ऐसा केवली

भगवान्के शासनमें कहा गया है।।१३३।।

इस तरह श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें परमसमाध्यधिकार नामक नौवाँ अधिकार समाप्त हुआ।।९।।

***

१०

परमभक्त्यधिकार

सम्मत्तणाणचरणे, जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती, होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं।।१३४।।

जो श्रावक अथवा मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमें भक्ति करता है उसे निवृत्ति भक्ति -- मुक्तिकी प्राप्ति होती है ऐसा जिनेंद्र भगवान्ने कहा है।।१३४।।

मोक्खंगयपुरिसाणं, गुणभेदं जाणिऊण तेसिंपि।
जो कुणदि परमभत्तिं, ववहारणयेण परिकहियं।।१३५।।

मोक्षको प्राप्त करनेवाले पुरुषोंके गुणभेदको जानकर उनकी भी परम भक्ति करता है उसे भी निवृत्ति भक्ति -- मुक्तिकी प्राप्ति होती है ऐसा व्यवहारनयसे कहा गया है।।१३५।।

मोक्खपहे अप्पाणं, ठविऊण य कुणदि णिव्वुदी भत्ती।
तेण दु जीवो पावइ, असहायगुणं णियप्पाणं।।१३६।।

मोक्षमार्गमें अपने आपके स्थापित कर जो निवृत्ति भक्ति -- मुक्ति की आराधना करता है उससे जीव असहाय -- स्वापेक्ष गुणोंसे युक्त निज आत्माको प्राप्त करता है।।१३६।।

रायादीपरिहारे, अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो, इदरस्स य कह हवे जोगो।।१३७।।

जो साधु अपने आत्माको रागादिकके परित्यागमें लगाता है वह योगभक्तिसे युक्त है, अन्य साधुके योग कैसे हो सकता है?।।१३७।।

सव्वविअप्पाभावे, अप्पाणं जो दु जुंजदे साहू।
सो जोगभत्तिजुत्तो, इदरस्स य किह हवे जोगो।।१३७।।

जो साधु अपने आत्माको समस्त विकल्पोंके अभावोंमें लगाता है वह योग भक्तिसे युक्त है, अन्य साधुके योग किस प्रकार हो सकता है?।।१३८।।

योगका लक्षण

विवरीयाभिणिवेसं, परिचत्ता जोण्हकहियतच्चेसु।
जो जुंजदि अप्पाणं, णियभावे सो हवे जोगो।।१३९।।

जो विपरीत अभिप्रायको छोड़कर जिनेंद्रदेव द्वारा कथित तत्त्वोंमें अपने आपको लगाता है उसका वह निजभाव ही योग है।।१३९।।

उसहादिजिणवरिंदा, एवं काऊण जोगवरभत्तिं।
णिव्वुदिसुहमावण्णा, तम्हा धरु जोगवरभत्तिं।।१४०।।

ऋषभादि जिनेंद्र इस प्रकार योगकी उत्तम भक्ति कर निर्वाणके सुखको प्राप्त हुए हैं इसलिए तू भी योगकी उत्तम भक्तिको धारण कर।।१४०।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंद स्वामी विरचित नियमसार ग्रंथमें परमभक्त्यधिकार नामका
दसवाँ अधिकार समाप्त हुआ।।१०।।

***

११

निश्चयपरमावश्यकाधिकार

आवश्यक शब्दकी निरुक्ति

जो ण हवदि अण्णवसो, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।
कम्मविणासणजोगो, णिव्वुदिमग्गो त्ति पिज्जुत्तो।।१४१।।

जो अन्यके वशमें नहीं होता उसके कार्यको आवश्य (आवश्यक) कहते हैं। कर्मोंका नाश करनेवाला जो योग है वही निवृति -- निर्वाणका मार्ग है ऐसा कहा गया है।।१४१।।

आवश्यक युक्तिका निरुक्तार्थ

ण वसो अवसो अवसस्स कम्म वावस्सयं त्ति बोधव्वा।
जुत्ति त्ति उवाअं ति य, णिरवयवो होदि णिज्जेत्ति।।१४२।।

जो अन्यके वश नहीं है वह अवश है और अवशका जो कर्म है वह आवश्यक (आवश्य) है ऐसा ा चाहिए। युक्ति इसका अर्थ उपाय है। आवश्यकको जो युक्ति है वह आवश्यक युक्ति है। इस तरह

आवश्यक युक्ति शब्दका संपूर्ण निरुक्ति अर्थ है।

भावार्थ -- शब्दसे निकलनेवाले अर्थको निरुक्ति कहते हैं। यहाँ आवश्यक युक्ति शब्द का ऐसा ही अर्थ बतलाया गया है।।१४२।।

वट्टदि जो सो समणो, अण्णवसो होदि असुहभावेण।
तम्हा तस्स दु कम्मं, आवस्सयलक्खणं ण हवे।।१४३।।

जो साधु अशुभ भावसे प्रवृत्ति करता है वह अन्य वश है इसलिए उसका कार्य आवश्यक नामसे युक्त नहीं है।

भावार्थ -- अवश साधुका कार्य आवश्यक है, अन्यवश साधुका कार्य आवश्यक नहीं है।।१४३।।

जो चरदि संजदो खलु, सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तम्हा तस्स दु कम्मं, आवासयलक्खणं ण हवे।।१४४।।

जो साधु निश्चयसे शुभ भावमें प्रवृत्ति करता है वह अन्यवश है इसलिए उसका कर्म आवश्यक नामवाला नहीं है।

भावार्थ -- एकसौ तैंतालीस तथा एकसौ चवालीसवीं गाथामें कहा गया है कि जो साधु शुभ और अशुभ भावोंमें प्रवृत्ति करता है वह अवश नहीं है, किंतु अन्यवश है। इसलिए उसका जो कर्म है वह आवश्य अथवा आवश्यक नहीं कहला सकता है।।१४४।।

दव्वगुणपज्जयाणं, चित्तं जो कुणइ सो वि अण्णवसो।
मोहंधयारववगयसमणा कहयंति एरिसयं।।१४५।।

जो साधु द्रव्य, गुण और पर्यायोंके मध्यमें अपना चित्त लगाता है अर्थात् उनके विकल्पमें पड़ता है वह भी अन्यवश है ऐसा मोहरूपी अंधकारसे रहित मुनि कहते हैं।।१४५।।

आत्मवश कौन है?

परिचत्ता परभावं, अप्पाणं झादि णिम्मलसहावं।
अप्पवसं सो होदि हु, तस्स दु कम्मं भणंति आवासं।।१४६।।

जो परपदार्थको छोड़कर निर्मल स्वभाववाले आत्माका ध्यान करता है वश आत्मवश है। निश्चयसे उसके कर्मको आवश्यक कर्म कहते हैं।।१४६।।

शुद्ध निश्चय आवश्यक प्राप्तिका उपाय

आवासं जइ इच्छसि, अप्पसहावेसु कुणदि थिरभावं।
तेण दु सामण्णगुणं, संपुण्णं होदि जीवस्स।।१४७।।

यदि तू आवश्यकको इच्छा करता है तो आत्मस्वभावमें अत्यंत स्थिर भावको कर। उस

जीवका श्रामण्यगुण -- मुनिधर्म पूर्ण होता है।।१४७।।

आवश्यक करनेकी प्रेरणा

आवासएण हीणो, पब्भट्ठो होदि चरणदो समणो।
पुव्वुत्तकमेण पुणो, तम्हा आवासयं कुज्जा।।१४८।।

क्योंकि आवश्यकसे रहित साधु चारित्रसे अत्यंत भ्रष्ट है इसलिए पूर्वोक्त क्रमसे आवश्यक करना चाहिए।।१४८।।

आवासएण जुत्तो, समणो सो होदि अंतरंगप्पा।
आवासय परिहीणो, समणो सो होदि बहिरप्पा।।१४९।।

जो साधु आवश्यक कर्मसे युक्त है वह अंतरात्मा है और जो आवश्यक कर्मसे रहित है वह बहिरात्मा है।।१४९।।

अंतरबाहिरजप्पे, जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ, सो उच्चइ अंतरंगप्पा।।१५०।।

जो साधु अंतर्जल्प और बाह्य जल्पमें वर्तता है वह बहिरात्मा है और जो (किसी भी प्रकारके) जल्पोंमें नहीं वर्तता है वह अंतरात्मा कहा जाता है।।१५०।।

जो धम्मसुक्कझाणम्हि परिणदो सोवि अंतरंगप्पा।
झाणविहीणो समणो, बहिरप्पा इदि विजाणीहि।।१५१।।

जो धर्म्यध्यान और शुक्लध्यानमें परिणत है वह भी अंतरात्मा है। ध्यानविहीन साधु बहिरात्मा है ऐसा जान।।१५१।।

प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंकी सार्थकता

पडिकमणपहुदि किरियं, कुव्वंतो णिच्छयस्स चारित्तं।
तेण दु विरागचरिए, समणो अब्भुट्ठिदो होदि।।१५२।।

प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंको करनेवालेके निश्चय चारित्र होता है और उस निश्चय चारित्रसे साधु वीतराग चारित्रमें उद्यत होता है।

भावार्थ -- यहाँ प्रतिक्रमण आदि क्रियाओंकी सार्थकता बतलाते हुए कहा गया है कि जो साधु प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा आलोचना आदि क्रियाओंको करता रहता है उसीके निश्चय चारित्र होता है और उस निश्चय चारित्रके द्वारा ही साधु वीतराग चारित्रमें आरूढ़ होता है।।१५२।।

वयणमयं पडिकमणं, वयणमयं पच्चखाण णियमं च।
आलोयण वयणमयं, तं सव्वं जाण सज्झाउं।।१५३।।

जो वचनमय प्रतिक्रमण, वचनमय प्रत्याख्यान और वचनमय आलोचना है उस सबको तू स्वाध्याय जान।

भावार्थ -- प्रतिक्रमण आदिके पाठ बोलना स्वाध्यायमें गर्भित हैं।।१५३।।

जदि सक्कदि कादुं जे, पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्तिविहीणो जा जइ, सद्दहणं चेव कायव्वं।।१५४।।

हे मुनिशार्दूल! यदि करनेकी सामर्थ्य है तो तुझे ध्यानमय प्रतिक्रमणादि करना चाहिए और यदि शक्तिसे रहित है तो तुझे तब तक श्रद्धान ही करना चाहिए।।१५४।।

जिणकहियपरमसुत्ते, पडिकमणादिय परीक्खऊण फुडं।
मोणव्वएण जोई, णियकज्जं साहये णिच्चं।।१५५।।

जिनेंद्रदेवके द्वारा कहे हुए परमागममें प्रतिक्रमणादिकी अच्छी तरह परीक्षा कर योगीको निरंतर मौनव्रतसे निजकार्य सिद्ध करना चाहिए।।१५५।।

विवाद वर्जनीय है

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहिं वज्जिज्जो।।१५६।।

नाना जीव हैं, नाना कर्म हैं और नाना प्रकारकी लब्धियाँ हैं, इसलिए स्वधर्मियों और परधर्मियोंके साथ वचनसंबंधी विवाद वर्जनीय है -- छोड़नेके योग्य है।।१५६।।

सहजतत्त्वकी आराधनाकी विधि

लद्धूणं णिहि एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणत्तें।
तह णाणी णाणणिहिं, भुंजेइ चइत्तु परतत्तिं।।१५७।।

जिस प्रकार कोई एक मनुष्य निधिको पाकर स्वजन्मभूमिमें स्थित हो उसका फल भोगता है उसी प्रकार ज्ञानी जीव ज्ञानरूपी निधिको पाकर परसमूहको छोड़ उसका अनुभव करता है।।१५७।।

सव्वे पुराणपुरिसा, एवं आवासयं य काऊण।
अपमत्तपहुदिठाणं, पडिवज्ज य केवली जादा।।१५८।।

समस्त पुराणपुरुष इस प्रकार आवश्यक कर अप्रमत्तादिक स्थानोंको प्राप्त करके केवली हुए हैं।

भावार्थ -- जितने पुराणपुरुष अबतक केवली हुए हैं वे सब पूर्वोक्त विधिसे प्रमत्तविरत नामक छठवें गुणस्थानमें आवश्यक कर्मको करके अप्रमत्तादि गुणस्थानोंको प्राप्त हुए हैं और तदनंतर केवली हुए हैं।।१५८।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसार ग्रंथमें निश्चयपरमावश्यकाधिकार नामका ग्यारहवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।।११।।

***

१२

शुद्धोपयोगाधिकार

निश्चय और व्यवहार नयसे केवलीकी व्याख्या

जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणएण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि, पस्सदि णियमेण अप्पाणं।।१५९।।

व्यवहार नयसे केवली भगवान् सबको जानते और देखते हैं, परंतु निश्चय नयसे केवलज्ञानी अपने आपको जानते देखते हैं।।१५९।।

केवलज्ञान और केवलदर्शन साथ साथ होते हैं

जुगवं वट्टइ णाणं, केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयरपयासतापं, जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।।१६०।।

जिसप्रकार सूर्यका प्रकाश और प्रताप एक साथ वर्तता है उसी प्रकार केवलज्ञानीका ज्ञान और दर्शन एकसाथ वर्तता है ऐसा जानना चाहिए।

भावार्थ -- छद्मस्थ जीवोंके पहले दर्शन होता है उसके बाद ज्ञान होता है, परंतु केवली भगवान्के दर्शन और ज्ञान दोनों साथही होते हैं।।१६०।।

ज्ञान और दर्शनके स्वरूपकी समीक्षा

णाणं परप्पयासं, दिट्ठी अप्पप्पयासया चेव।
अप्पा सपरपयासो, होदि त्ति हि मण्णसे जदि हि।।१६१।।

ज्ञान परप्रकाशक है, दर्शन स्वप्रकाशक है और आत्मा स्वपरप्रकाशक है ऐसा यदि तू वास्तवमें मानता है (तो यह तेरी विरुद्ध मान्यता है।) ।।१६१।।

णाणं परप्पयासं, तइया णाणेण दंसणं भिण्णं।
ण हवदि परदव्वगयं, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।।१६२।।

यदि ज्ञान परप्रकाशक ही है तो दर्शन ज्ञानसे भिन्न सिद्ध होगा क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत नहीं होता

ऐसा पूर्वसूत्रमें कहा गया है।।१६२।।

अप्पा परप्पयासो, तइया अप्पेण दंसणं भिण्णं।

ण हवदि परदव्वगयं, दंसणमिदि वण्णिदं तम्हा।।१६३।।

यदि आत्मा परप्रकाशक ही है तो दर्शन आत्मासे भिन्न होगा क्योंकि दर्शन परद्रव्यगत नहीं होता ऐसा पहले कहा गया है।।१६३।।

णाणं परप्पयासं, ववहारणयेण दंसणं तम्हा।

अप्पा परप्पयासो, ववहारणयेण दंसणं तम्हा।।१६४।।

व्यवहारनयसे ज्ञान परप्रकाशक है इसलिए दर्शन परप्रकाशक है और आत्मा व्यवहारनयसे परप्रकाशक है इसलिए दर्शन परप्रकाशक है।।१६४।।

णाणं अप्पपयासं, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।

अप्पा अप्पपयासो, णिच्छयणयएण दंसणं तम्हा।।१६५।।

निश्चयनयसे ज्ञान स्वप्रकाशक है इसलिए दर्शन स्वप्रकाशक है और निश्चयनयसे आत्मा स्वप्रकाशक है इसलिए दर्शन स्वप्रकाशक है।।१६५।।

अप्पसरूवं पेच्छदि, लोयालोयं ण केवली भगवं।

जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ।।१६६।।

केवली भगवान् निश्चयसे आत्मस्वरूपको देखते हैं, लोक-अलोकको नहीं देखते हैं, यदि ऐसा कोई कहता है तो उसे क्या दूषण है? अर्थात् नहीं है।।१६६।।

प्रत्यक्ष ज्ञानका वर्णन

मुत्तममुत्तं दव्वं, चेयणमियरं सगं च सव्वं च।

पेच्छंतस्स दु णाणं, पच्चक्खमणिंदियं होइ।।१६७।।

मूर्त, अमूर्त, चेतन, अचेतन द्रव्य तथा स्व और समस्त परद्रव्यको देखनेवाला ज्ञान प्रत्यक्ष एवं अतींद्रिय होता है।।१६७।।

परोक्ष ज्ञानका वर्णन

पुव्वुत्तसयलदव्वं, णाणागुणपज्जएण संजुत्तं।

जो ण य पेच्छइ सम्मं, परोक्खदिट्ठी हवे तस्स।।१६८।।

जो नाना गुण और पर्यायोंसे संयुक्त पूर्वोक्त समस्त द्रव्योंको अच्छी तरह नहीं देखता है उसकी दृष्टि परोक्ष दृष्टि है अर्थात् उसका ज्ञान परोक्ष ज्ञान है।।१६८।।

लोयालोयं जाणइ, अप्पाणं णेव केवली भगवं।
जइ कोइ भणइ एवं, तस्स य किं दूसणं होइ।।१६९।।

केवली भगवान् (व्यवहारसे) लोकालोकको जानते हैं, आत्माको नहीं, ऐसा यदि कोई कहता है तो क्या उसका दूषण है? अर्थात् नहीं है।।१६९।।

णाणं जीवसरूवं, तम्हा जाणेइ अप्पगं अप्पा।
अप्पाणं ण वि जाणदि, अप्पादो होदि विदिरित्तं।।१७०।।

ज्ञान जीवका स्वरूप है इसलिए आत्मा आत्माको जानता है, यदि ज्ञान आत्माको न जाने तो वह आत्मासे भिन्न -- पृथक् सिद्ध हो।।१७०।।

अप्पाणं विणु णाणं, णाणं विणु अप्पगो ण संदेहो।
तम्हा सपरपयासं, णाणं तह दंसणं होदि।।१७१।।

आत्माको ज्ञान जानो और ज्ञान आत्मा है ऐसा जानो, इसमें संदेह नहीं है इसलिए ज्ञान तथा दर्शन दोनों स्वपरप्रकाशक हैं।।१७१।।

केवलज्ञानीके बंध नहीं है

जाणंतो पस्संतो, ईहा पुव्वं ण होइ केवलिणो।
केवलणाणी तम्हा, तेण दु सोऽबंधगो भणिदो।।१७२।।

जानते देखते हुए केवलीके पूर्वमें इच्छा नहीं होती इसलिए वे केवलज्ञानी अबंधक -- बंधरहित कहे गये हैं।

भावार्थ -- बंधका कारण इच्छा है, मोह कर्मका सर्वथा क्षय होनेसे केवलीके जानने देखनेके पहले कोई इच्छा नहीं होती और इच्छाके बिना उनके बंध नहीं होता।।१७२।।

केवलीके वचन बंधके कारण नहीं हैं

परिणामपुव्ववयणं, जीवस्स य बंधकारणं होई।
परिणामरहियवयणं, तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।।१७३।।
ईहापुव्वं वयणं, जीवस्स य बंधकारणं होई।
ईहारहियं वयणं, तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।।१७४।।

परिणामपूर्वक -- अभिप्रायपूर्वक वचन जीवके बंधका कारण है। क्योंकि ज्ञानीका वचन परिणामरहित है इसलिए उसके बंध नहीं होता।।१७३।।

इच्छापूर्वक वचन जीवके बंधका कारण होता है, क्योंकि ज्ञानी जीवका वचन इच्छारहित है

इसलिए उसके बंध नहीं होता।।१७४।।

ठाणणिसेज्जविहारा, ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।
तम्हा ण होइ बंधो, साकट्ठं मोहणीयस्स।।१७५।।

केवलीके खड़े रहना, बैठना और विहार करना इच्छापूर्वक नहीं होते हैं, इसलिए उन्हें तन्निमित्तक बंध नहीं होता। बंध उसके होता है जो मोहके उदयसे इंद्रियजन्य विषयोंके सहित होता है।।१७५।।

कर्मक्षयसे मोक्ष प्राप्त होता है

आउस्स खएण पुणो, णिण्णासो होइ सेसपयडीणं।
पच्छा पावइ सिग्घं, लोयग्गं समयमेत्तेण।।१७६।।

आयुके क्षयसे केवलीके समस्त प्रकृतियोंका क्षय हो जाता है, पश्चात् वे समयमात्रमें शीघ्र ही लोकाग्रको प्राप्त कर लेते हैं।।१७६।।

कारण परमतत्त्वका स्वरूप

जाइजरमरणरहियं, परमं कम्मट्ठवज्जियं सुद्धं।
णाणाइचउसहावं, अक्खयमविणासमच्छेयं।।१७७।।

वह कारणपरमतत्त्व जन्म जरा और मरणसे रहित है, उत्कृष्ट है, आठ कर्मोंसे वर्जित है, शुद्ध है, ज्ञानादिक चार गुणरूप स्वभावसे सहित है, अक्षय है, अविनाशी है और अच्छेद्य -- छेदन करनेके अयोग्य है।।१७७।।

अव्वाबाहमणिंदियमणोवमं पुण्णपावविणिमुक्कं।
पुणरागमणविरहियं, णिच्चं अचलं अणालंबं।।१७८।।

वह कारणपरमतत्त्व अव्याबाध, अनिंद्रिय, अनुपम, पुण्य-पापसे निर्मुक्त, पुनरागमनसे रहित, नित्य, अचल और अनालंब -- परके आलंबनसे रहित है।।१७८।।

निर्वाण कहाँ होता है?

णवि दुःखं णवि सुक्खं, णवि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
णवि मरणं णवि जणणं, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१७९।।

जहाँ न दुःख है, न सांसारिक सुख है, न पीड़ा है, न बाधा है, न मरण है और न जन्म है, वहीं निर्वाण होता है।।१७९।।

ण वि इंदिय उवसग्गा, ण वि मोहो विम्हियो ण णिद्दा य।
णय तिण्हा णेव छुहा, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१८०।।

जहाँ न इंद्रियाँ हैं, न उपसर्ग है, न मोह है, न विस्मय है, न तृषा है और न क्षुधा है वहीं निर्वाण होता है।।१८०।।

ण वि कम्मं णोकम्मं, णवि चिंता णेव अट्टरुद्दाणि।

णवि धम्मसुक्कझाणे, तत्थेव य होइ णिव्वाणं।।१८१।।

जहाँ न कर्म है, न नोकर्म है, न चिंता है, न आर्त-रौद्र ध्यान है और न धर्म्य शुक्ल ध्यान हैं, वहीं निर्वाण होता है।।१८१।।

सिद्ध भगवान्‌का स्वरूप

विज्जदि केवलणाणं, केवलसोक्खं च केवलं विरयं।

केवलदिट्ठि अमुत्तं अत्थित्तं सपदेसत्तं।।१८२।।

उन सिद्ध भगवान्‌के केवलज्ञान है, केवलसुख है, केवलवीर्य है, केवलदर्शन है, अमूर्तिकपना है, अस्तित्व है तथा प्रदेशोंसे सहितपना है।।१८२।।

निर्वाण और सिद्धमें अभेद

णिव्वाणमेव सिद्धा, सिद्धा णिव्वाणमिदि समुद्दिट्ठा।

कम्मविमुक्को अप्पा, गच्छइ लोयग्गपज्जंत्तं।।१८३।।

निर्वाण ही सिद्ध हैं और सिद्ध ही निर्वाण हैं ऐसा कहा गया है। कर्मसे विमुक्त आत्मा लोकाग्रपर्यंत जाता है।।१८३।।

कर्मविमुक्त आत्मा लोकाग्रपर्यंत ही क्यों जाता है?

जीवाणं पुग्गलाणं, गमणं जाणेहि जाव धम्मत्थी।

धम्मत्थिकायभावे, तत्तो परदो ण गच्छंति।।१८४।।

जीव और पुद्‌गलोंका गमन जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहाँ तक होता है। लोकाग्रके आगे धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे कर्ममुक्त आत्माएँ नहीं जाती हैं।।१८४।।

ग्रंथका समारोप

णियमं णियमस्स फलं, णिद्दिट्ठं पवयणस्स भत्तीए।

पुव्वावरविरोधो जदि, अवणीय पूरयंतु समयण्हा।।१८५।।

इस ग्रंथमें प्रवचनकी भक्तिसे नियम और नियमका फल दिखलाया गया है। इसमें यदि पूर्वापर विरोध हो तो आगमके ज्ञाता पुरुष उसे दूर कर पूर्ति करें।।१८५।।

ईसाभावेण पुणो, केई णिंदंति सुंदरं मग्गं।

तेसिं वयणं सोच्चाऽभत्तिं मा कुणह जिणमग्गे।।१८६।।

और कितने ही लोग ईर्ष्याभावसे सुंदर मार्गकी निंदा करते हैं, इसलिए उनके वचन सुनकर जिनमार्गमें अभक्ति -- अश्रद्धा न करो।।१८६।।

णियभावणाणिमित्तं, मए कदं णियमसारणामसुदं।
णच्चा जिणोवदेसं, पुव्वावरदोसणिम्मुक्कं।।१८७।।

मैने पूर्वापर दोषसे रहित जिनोपदेशको जानकर निजभावनाके निमित्त यह नियमसार नामका शास्त्र रचा है।।१८७।।

इस प्रकार श्री कुंदकुंदाचार्य विरचित नियमसारमें शुद्धोपयोगाधिकार नामका
बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।।१२।।

*